विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष १२ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२६ • आसाढ़ पूर्णिमा [शक] • दि. ६-७-१९८२ • अंक १

प्रवचन--प्रवाह

छठा दिन

साधनाके छह दिन पूरे हुए। हमारी सफलता इसी बात पर निर्भर है कि विधिको ठीक-ठीक समझते हुए आगे बढ़ें। आओ, आज फिर समझें यह विधि कैसी है? इसका क्या अनूठापन है? क्या अनोखापन है?

इस विधिके दो पक्ष हैं, दो पहलू हैं। दोनों अत्यंत आवश्यक हैं। अत्यंत महत्वके हैं। ये पक्ष हैं समथ और विपश्यना। पहलेका अर्थ है चित्तकी ऐसी एकाग्रता, सूक्ष्मता, तीक्ष्णता कि वह गहराइयों तक सच्चाईको जान ले। दूसरे का अर्थ है तटस्थता याने इसे जानकर जरा भी विचलित न हो। न खुशियोंमें नाचने लगे, न दुःखमें रोने लगे। संतुलन रखे। जाने भी और समतामें भी रहे। जिस अवस्थाको नहीं जान रहे हैं, उसे पहले जानें और फिर समतामें स्थापित हों।

याने तटस्थ रहकर जानें। तटस्थ किसे कहते हैं? नदीके तट पर बैठे हैं और नदीके प्रवाहको देख रहे हैं। जो प्रवाह अपने स्वभावसे गतिमान है, उसे देख रहे हैं। ठीक इसी तरह सिरसे पांव तक हमारे शरीरमें जो कुछ स्वभावसे हो रहा है, उसे जानना है। जैसे नदीके प्रवाहमें कई तरहके पदार्थ व तरंगे आती हैं वैसे ही हमारे शरीरमें भी संवेदनाएँ आती हैं। ये संवेदनाएँ आती हैं, जानेके लिए ही आती हैं, और चली जाती है। जिस तरह तटस्थ होकर नदीके प्रवाहको देखते हैं उसी तरह साक्षीभावसे शरीरको देखना है।

आत्मदर्शन संबंधी किसी बातको केवल इसलिए नहीं मान लेना है कि इसे किसी महापुरुष ने कही हैं। अनुभूति पर उतरे तभी मानना है। जानो तब मानो। जानकर मानना अपने आपको सुधारना है। बिना जाने मानना अपने आपको उलझाना है। अनुभूतियों द्वारा प्रत्यक्ष साक्षात्कार करें। परोक्ष ज्ञान बांधता है, प्रत्यक्ष ज्ञान खोलता है। उस महापुरुषको सम्यक सम्बोधि प्राप्त हुई तो उसने देखा कि संसारके लोग अपने अज्ञानके कारण बुद्धि विलासमें उलझे हैं, भटके हुए हैं। यदि यह सामान्य सी कुदरतकी बात अनुभूतियोंसे समझ लेंगे तो बड़ा कल्याण होगा। उलझन क्या है? प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं करें, प्रत्यक्ष दर्शन नहीं करें। लेकिन परोक्ष ज्ञानकी इतनी चर्चा करें कि सारा जीवन चर्चामें बिता दें। यह बड़ी उलझन है।

कौतूहल मंगलका एक नशा होता है। कोतूहल पूरा करें ओर उसीमें अपना मंगल मानें। लेकिन कोतूहल कहाँ पूरा होता है? आज एक कौतूहल पूरा हुआ कि कल दूसरा सिर उठायेगा। दूसरा पूरा हुआ कि तीसरा सिर उठायेगा। जैसे तृष्णाका अन्त नहीं होता वैसे ही कौतूहलका भी अंत नहीं होता। कोतूहल पूरा करनेके लिए बुद्धि-विलास हीं करते हैं। दर्शनकी केवल बात करते हैं। जबकि दर्शनका अर्थ है साक्षात्कार, जो केवल अनुभूतिसे ही प्राप्त होता है। लेकिन दर्शनको फिलासफी बनाकर कोरे ज्ञान की चर्चामें उलझे रहते हैं। और करने लगते है वाद-विवाद, बहस-और झगड़े। सारी निकम्मी बातें।

उस महापुरुषने केवल काम की ही बात की। जब अन्तर्मुखी होकर स्वयं को देखा और विभाजन करते-करते उस नन्हें 'कलाप' तक पहुँच गया तो पाया कि इसमें चार महाभूत हैं— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु अपने-अपने गुण, धर्म और स्वभावके साथ। पृथ्वी धातुसे यह न समझ लें कि कोई मिट्टीका कण होगा। जल धातु कहा जाय तो उससे पानीकी बूंद न ढूंढने लगें। इसी प्रकार अग्नि धातु कहें तो कोई चिनगारी नहीं ढूंढने लगें। वायु धातु कहने पर कोई हवाका झोंका न खोजने लगे। देखना है इन धातुओं के नैसर्गिक गुणोंको, नैसर्गिक धर्मको। पृथ्वी धातुका नैसर्गिक गुण, धर्म, स्वभाव क्या है? पृथ्वी

धम्म वाणी

सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु न समिं जन्ति पण्डिता॥

धम्मपद-८१.

जैसे सघन शैल-पर्वत हवासे प्रकम्पित नहीं होता, वैसे ही समझदार लोग निन्दा और प्रशंसासे विचलित नहीं होते।

धातु आकाशको घेरती है। फैल करके घेरती है और आकाशसे घिर जाती है। उसका किस प्रकार अनुभव किया जाय? भारी है, हल्का है। हल्के से हल्केको लेकर भारी से भारी तक का वजनका सारा क्षेत्र पृथ्वी धातुको अनुभव करनेका क्षेत्र है। अग्नि धातुका क्षेत्र है शीतल से शीतल और गर्मसे गर्म तककी अवस्था। याने तापमनका पूरा क्षेत्र अग्नि धातुका क्षेत्र है। इसी प्रकार हलन–चलनका सारा क्षेत्र वायु धातुका क्षेत्र है। और जल धातुका क्षेत्र है नमी द्वारा बांधना, संयोजित करना, संश्लिष्ट करना।

विपश्यनाका अभ्यास करते हुए हमें शरीरमें विभिन्न प्रकारकी संवेदनाओंकी अनुभूतियाँ होती हैं। जब कभी पृथ्वी धातु प्रबल होकर आती है तो कहीं भारी लगता है, कहीं हल्का लगता है। जब वायु धातु प्रबल होकर आती है तो किसी प्रकारकी हलन–चलन, तरंग या धडकनका अनुभव होता है। हर एक धातु अपने–अपने स्वभावको प्रकट करती है। इसी शरीर–स्कंधके परमाणु–समूहमें चारों महाभूत समाए हुए हैं। इन चारों महाभूतों मेंसे जब एक प्रबल होकर आयेगा तो अपने गुण, धर्म, स्वभावको प्रकट करेगा और उसे ही हम संवेदनाओंके रूपमें अनुभव करेंगे। अन्य सुसुप्त रहेंगे। कभी यह भी होता है कि दो महाभूत एक साथ प्रकट होकर आते हैं तो दोनोंके गुण, धर्म, स्वभावका अनुभव होता है। लेकिन ऐसा नहीं होता कि चारों एक साथ प्रबल होकर उठें।

बाहरकी दुनियांमें भी हम यही देखते हैं। कहीं ठोस बर्फ है तो उसे पृथ्वी धातु कहें। जब बर्फ पिघलकर तरल हो गयी, पानी बन गयी तो उसे ही जल धातु कहें, भाप बनकर हवा बन गयी तो उसे वायु धातु कहें और तीनों ही अवस्थामें उसमें तापमान है, सर्द है तो उसे अग्नि धातु कहें।

इसी प्रकार भीतर भी हमें धातुओंकी अनुभूति होती है। उसे साक्षीभावसे देखें। यह शरीरका रसायन है। इसमें कभी इस प्रकारके कलाप, कभी उस प्रकारके कलाप अपने अपने गुण, धर्म, स्वभाव लिए हुए उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं। प्रकट होते हैं जानेके लिए ही। प्रकृतिके इस खेलको, इस प्रपंचको समझें। यदि इसे भोगने लगेंगे तो राग और द्वेषके नए संस्कार बनने लगेंगे। अज्ञान है तो ही भोगते हैं। भोगते हैं तो ही बंधते हैं। ज्ञान जग जाय, बोधि जग जाय, बात समझमें आ जाय तो यही खुलनेका उपाय बन जाय।

हम यह भी समझें कि यह जो भिन्न–भिन्न स्वभावके परमाणु प्रमुख होकर सामने जाते हैं, उनका क्या कारण है? बिना कारण संसारमें कुछ नहीं होता। चार मोटे–मोटे कारण हे इनके। एक मोटा कारण तो यह है कि इस परमाणुयोंके पुंज को याने अपने शरीरको जो हम भौतिक आहार देते हैं। जैसा भोजन देते हैं, आहार देते हैं, वैसे ही परमाणु बनेंगे। ज्यों–ज्यों संवेदनाओंको देखनेमें साधक पुष्ट होगा, यह बात अपने अनुभवसे ठीक तरहसे स्पष्ट होने लगेगी। किसी दिन यदि बहुत मिर्च–मसाले का भोजन कर लिया तो ध्यानके समय सारे शरीरमें जलन महसूस होगी। आयी अग्नि धातु अपना प्रभाव लेकर। किसी दिन बासी भोजन कर लिया या तला हुआ गरिष्ट भोजन कर लिया तो बहुत भारीपन महसूस होगा ध्यानके समय। यह पृथ्वी धातुका प्रकटीकरण है। यदि हम स्वस्थ भोजन करें तो शरीरके सारे परमाणु, शरीरका सारा गठन, सारी रचना भी स्वस्थ होगी। यदि अस्वस्थ भोजन करें तो शरीरकी रचना भी अस्वस्थ होगी। जो आहार दे रहे हैं वह शरीरमें परमाणुओंकी उत्पत्तिका एक मोटा कारण है।

शरीरमें परमाणुओंके निर्माणका एक अन्य कारण भी है। इस भौतिक आहारके अतिरिक्त हम अपने शरीरके पोर–पोरसे निरन्तर आहार ग्रहण कर रहे हैं जो हमें बाह्य वातावरणसे मिलता है। जैसा बाहरका वातावरण होगा, वैसाही आहार मिलेगा और वैसेही भीतर परमाणु बनेंगे। हमारी इस शरीर धारा को ये दो आहार मिलते ही रहते है। इस शरीर धारा याने रुप धाराके साथ एक अन्य धारा चित्तकी याने "नाम" की भी चलती है। यह चेतनाकी धारा भी बिना आहारके आगे नहीं चलती। इसे चेतनाका ही आहार मिलता है। चेतनाका यह आहार क्या है? जिस क्षण हम जो संस्कार बनाते है, चेतना की धाराका उस क्षणका वही आहार है, वही भोजन है। अनुभूतियों के स्तरपर इस सारे खेलेको देखेंगे। क्रोध आया कि अगले क्षणका चित्त उसी क्रोधकी संतान होगा। अगले क्षण फिर क्रोधका संस्कार जागा तो इस क्रोधके आहारपर यह चित्तधारा चलती रही। वासना जागी तो देर तक बासनाके आधार पर ही चित्तधारा आगे बढ़ती रही। प्रतिक्षण यही होता रहा। इसे प्रतिक्षण आहार चाहिए बढ़ने के लिए। यदि नया आहार नहीं मिला, नया संस्कार नहीं बनाया गया तो पुराने संस्कार जो मरे पड़े है, वे उखडने लगते हैं। पुराने जो बीज डाले हैं, उनमेसे कोई न कोई पक कर फल देता है। चित्तधारापर फल आता हैं, और चित्तधारा फिर आगे चलने लगती है। और ज्योंही फल उभरकर आता है, उसमें एक प्रकारकी संवेदना पैदा होती है। यदि हमने उसे प्रिय मान लिया तो फिर बना फिर बना लिया रागका नया संस्कार। अप्रिय मान लिया तो फिर बना लिया द्वेषका नया संस्कार। ज्योंही पुराने बीजका फल उभरकर आया त्योंही नए बीज डालने लगे। इस प्रकार नए संस्कार बनाते ही चले जाते हैं — "सङ्खार पच्चया विञ्ञाणं" इस क्षणके संस्कारसे ही अगले क्षण का विज्ञान याने चित्त उत्पन्न होता है। इस क्षण संस्कार न बने तो किसी पूर्व संस्कार से नया विज्ञान याने चित्त उत्पन्न होता है। जैसे–जैसे साधनामें आगे बढ़ेंगे, यह सारा रहस्य स्पष्ट होने लगेगा। जिस प्रकारका नया संस्कार डालेंगे अथवा पुरानेका फल जागेगा उसी प्रकारके परमाणु उत्पन्न होने शुरू हो जायेंगे और वैसी ही संवेदना होगी।

मन और शरीरका बड़ा गहरा सम्बन्ध है। ये जो कलाप हैं वे शरीर और चित्त दोनोंसे उत्पन्न होते हैं। यदि चित्त पर क्रोध आया तो शरीरमें अग्नि प्रधान परमाणु बन रहे हैं, जले जा रहे हैं। भय आया तो सारा शरीर कंपित हो रहा है, वायु प्रधान परमाणु उत्पन्न होते हैं। चित्त पर जैसे संस्कार डाल रहे हैं, वैसे ही परमाणु उत्पन्न होते हैं। यदि क्रोधका कोई पुराना संस्कार जागा हो तो जलनवाले परमाणु ही उठते हैं। वर्तमान वातावरणमें सर्दी हो तो भी शरीरमें जलन, गर्मी महसूस होती है।

शरीरमें जो परमाणु उत्पन्न हो रहे हैं वे चाहे भोजनके कारण हों, बाह्य वातावरणके कारण हों या पुराने संस्कारोंके कारण हों, यदि उन्हें द्रष्टाभावसे, तटस्थभावसे देखने लगेंगे तो नए संस्कार नहीं बनायेंगे। पुराने दूर होने लगेंगे। बस गांठें खोलनेका रास्ता मिल गया। अब तक जो अविद्याके कारण संस्कार बनते थे, उनका सारा रहस्य समझमें आने लगेगा। "अविज्जा पच्चया सङ्खारा"। जैसे कोई परमाणु उठा, उसने अपना स्वभाव प्रकट किया किसी संवेदनाके रूपमें, दुःखद संवेदना हो तो प्रतिक्रिया हुई नहीं चाहिए, नहीं चाहिए — द्वेषही द्वेष की। सुखद संवेदना हो तो चाहिए–चाहिए की, रागही राग की। इस प्रकार प्रतिक्षण संस्कार बनते ही रहते हैं। बात समझमें आ जाय तो प्रतिक्रिया न करें। धीरजसे, समता से दृष्टाभावसे संवेदनाके स्वभावको देखें। तो नया संस्कार बन ही नहीं सकता। और पुराने संस्कारोंका क्षय होने लगता है। "खीणं पुराणं नवं नत्थि संभवं"। बस कामकी बात हो गयी। बंधन खोलनेका तरीका मिल गया। लेकिन बंधन खोलनेका यह कार्य स्वयं को ही करना पडेगा। यदि स्वयं अनुभूतिके स्तर पर यह जाना ही नहीं कि कब राग जागा, कब द्वेष जागा तो राग और द्वेषसे छूटकारा कैसे मिलेगा? जब जब संवेदनाका अनुभव हो – सुखद या दुःखद और उसे जाने तथा दृष्टाभाव बनाए रखें तो उसके प्रति राग यहीं जागेगा द्वेष नहीं जागेगा। प्रज्ञा ही जागेगी। "वेदना पच्चया पञ्ञा" यों प्रज्ञामें पुष्ट होते–होते स्थितप्रज्ञ हो ही जायेंगे। जीवनमुक्त हो ही जायेंगे। केवल स्थितप्रज्ञताका पाठ करने से मुक्त नही होंगे। स्वयं परिश्रम करना होगा। रास्तमें कठिनाइयाँ अवश्य आयेंगी। लेकिन उन्हे हमें ही दूर करना है। कोई चमत्कार नहीं होनेवाला।

इस अज्ञानेके, मूढ़ताके, बुद्धि–विलासके स्वभावको कैसे बनाया? बार–बार एक ही प्रकारका व्यवहार करते–करते स्वभाव बन गया। राग पैदा करनेका स्वभाव, द्वेष पैदा करनेका स्वभाव। इस स्वभावको पलटने-में भी तो समय लगेगा ही। लेकिन जब यह मालूम हो जाय कि स्वभाव पलटा जा सकता है तो बहुत बड़े लाभकी बात हो जाय। फिर तो स्वभावको पलटनेका अभ्यास करना है और यही कर रहे हैं। किसी घटनाके घटने पर, अंध प्रतिक्रिया करनेके बजाय, देखनेका अभ्यास कर रहे हैं। जब समताभरे भावसे देखने लगेंगे तो अन्ध राग, अंध द्वेष पैदा नहीं होगा। समतामें स्थिर हैं तो क्रिया करेंगे, प्रतिक्रिया नहीं होगी। क्रिया हमेशा रचनात्मक होती है, विधेयात्मक होती है, कल्याणकारी होती है।

अपने स्वभावके पलटनेके अभ्यासमें समय लगेगा। कटनाइयाँ आयेंगी, बांधाएँ आयेंगी। उन्हे स्वीकार करना होगा। हमारे इस प्रयत्नमें पांच बड़ी–बाधाएँ हैं, पांच बड़े दुश्मन हैं। उन्हें पहचानें। उनके प्रति सजग रहें बाहरके दुश्मन होते तो सजग रहना आसान हो जाता। लेकिन ये तो पाँचों भीतरके दुश्मन हैं। न जाने कब सिर पर सवार हो जाँय पता ही नहीं लगता।

पहला दुश्मन है राग, दूसरा द्वेष। हम साधना कर रहे हैं राग और द्वेष निकालनेकी। लेकिन नासमझीमें साधना करते–करते राग और द्वेष में ही उलझने लगते हैं। हमें अमुक–अमुक संवेदना चाहिए, अमुक–अमुक संवेदना नहीं चाहिए। यही राग–द्वेषमें उलझना है। इससे बचना चाहिए। अन्य दो दुश्मन हैं–आलस्य और बेचैनी। साधना करते समय बड़ा आलस्य आने लगता है, नींद आने लगती है। कभी बड़ी बेचैनी होती है। साधनामें मन ही नहीं लगता। साधनाके अलावा अन्य काम करनेको जी चाहता है। और साधक दिन भर अन्य प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें उलझा रहता है। अन्य काम करेगा पर साधना नहीं करेगा। पांचवा दुश्मन है–संदेह। मनमें विचार उठेगा कि यह क्या साधना है? सांसको देखो, सांसको देखो! क्या देखें सांसको? सांसतो आता–जाता ही है। फिर गर्मी को देखो, सर्दीको देखो! इन्हें क्या देखें? ये तो मौसमकी वजहसे हैं। इस तरह मनमें शंका होगी और साधना छूट जायेगी।

किसी बातको अंधविश्वास से नहीं मानना है। साधना–विधिके बारेमें मनमें शंका उठे तो तत्काल मार्ग–दर्शक से मिलकर समाधान करा लेना चाहिए। भले अनेक बार मिलें पर अपनी शंकाओंका निवारण कर लें। इन पांचो दुश्मनोंसे बचें, सचेत और सजग होकर काममें लगे रहें।

कल्याण मित्र,

स. ना. गो.

(पू. गुरुदेवके प्रवचनका श्री. रामसिंह द्वारा संक्षिप्तिकरण)

इगतपुरी में स्वयं शिविर

स्व. शि. क्र. १०५ – २१–७–८२ से १–८–८२ तक

,, ,, १०६ – १–८–८२ से १२–८–८२ तक

,, ,, १०७ – १२–८–८२ से २३–८–८२ तक

,, ,, १०८ – २३–८–८२ से ३–९–८२ तक

संपर्क : व्यवस्थापक, वि. वि. वि; धम्मगिरी, इगतपुरी – ४२२४०३
(नासिक) फोन नं. इगतपुरी–७६.

भारत में भावी शिविर

शि. क्र. २१६ *हैदराबाद (विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र, 'धम्मखेत्त') दि. १४–७–८२ से २५–७–८२ तक (हिन्दी)

शि. क्र. (S-१०) *हैदराबाद ,, ,, ,, ,, दि. १६–९–८२ से २७–९–८२ तक

*संचालक : स. आ. श्री. एन. एच. परीख

*संपर्क : १) श्रीमती ऊषाबेन पी. मेहता, ६१, श्रीनगर कॉलोनी, हैदराबाद–५०० ८७३. फोन : ३०२९१. अथवा
२) श्री पूरनमल अग्रवाल, द्वारा–होटल राजधानी, सिद्दिअम्बर बाजार, हैदराबाद–५०० ०१२. फोन : ५७५७१.

शि. क्र. २१७ □जयपुर (विपश्यना केन्द्र, धम्मथली, गल्ताजी रोड) दि. ४–८–८२ से १५–८–८२ तक (हिन्दी)

□संपर्क – श्री श्यामसुन्दर मून्दडा, जी–१/ए, अशोक मार्ग, जयपुर–३०२ ००१. फोन : ६३३२२/ ६५४१४ तार–डॉली

शिविर क्रमांक एस ११ ※ काठमांडू (नेपाल) दि. ३१-१०-८२ से १०-११-८२ तक संचालक – श्री. रामसिंह
※ संपर्क : श्री मणिहर्ष ज्योति, ज्योति भवन, कांति पथ, पो. बाक्स नं. १३३, काठमांडू (नेपाल)
तार–हिमालआयरन, काठमांडू. फोन–आफिस : ११४९०/१४९०२/१४३२७, घर – ११२९०,

विदेशों में भावी शिविर

शिविर क्रमांक २१८	**Kyoto, Japan**
August 18–29	Contact : Chris Weeden, 503, 29–10 Higashi Korien Cho Neyagawa Shi, Osaka 572 Tel : (072) 034–2696
शिविर क्रमांक २१९	**Quebec, Canada**
September 1–12	Contact : Roger Gosselin, 189 Rue do St Jacques, East Angus PQ JOB 1RO Tel : (819) 872–3368
शिविर क्रमांक २२०	**Northern California U.S.A.**
September 13–24	Contact : Bill and Ann Crecelius P. O. Box 373 Littlc River, Cal. 95456 Tel : (707) 937–4631
शिविर क्रमांक. २२१	**Sydney Australia**
Sept. 29–Oct. 10	Contact : Vipassana Foundation 506, Wilson Street Chippendale 2008, Sydney Tel : 698–9181
शिविर क्रमांक २२२	**Auckland New Zealand**
October 11–22	Contact : Richard Fullerton Brighams Crcek R. D. 2, Kumou
Novem.–Decem.	There will be courses at V. I. A., Dhammagiri. For information, contact : Vipassana Intornational Academy, Dhammagiri, Igatpuri, Nasik Distt., Maharashtra, India 422 403

ग्राम : प्रेमकेबल फ़ोन : ४०३५१/४४५४७

मेसर्स दि प्रीमियर केबल कं. लिमिटेड

१४/१५ एफ़, कॅनौट सर्कस,
नई दिल्ली–११० ००१.
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

जितनो गैरो राग है, उतनो गैरो द्वेस।
जितनो गैरो द्वेस है, उतनो गैरो क्लेस॥
सुख दुख आता ही र वै, ज्यूं आवै दिन रैन।
तूं क्यूं खोवै बावळा ! अपणै मन की चैन॥
कठै गँवायो बावळा ! साम्य धरम रो तत्त।
'मैं-मैं' की मदिरा चढी, मानस हुयो प्रमत्त॥
जागी चित मँह बिसमता, सुखड़ा लीन्या लूट।
वै घड़ियां कद आवसी, 'मैं-मैं' जासी छूट॥
आयां सुख मानै नहीं, जायां दुख ना होय।
चित्त द्वन्द जो जीतगो, साचो बिजयी सोय॥
बिसयां रै सागै र वै, जागै नांय बिकार।
इसै अनोखै संत नै, बन्दूं बारम्बार।

दोहे धर्म के

राग सदृश ना रोग है, द्वेष सदृश ना दोष।
मोह सदृश ना मूढता, धर्म सदृश ना होश॥
क्षण क्षण जाग्रत ही रहे, शुद्ध सत्य का बोध।
मन की समता स्थिर रहे, तो ही दुक्ख-निरोध॥
सुख दुख आते ही रहे, ज्यों भाटा ज्यों ज्वार।
मन विचलित होवे नहीं, देख चढाव उतार॥
जीवन में आंधी चले, चले तेज तूफान।
पर्वत सा अविचल रहे, यही संत पहचान॥
चूर चूर कर पीस कर, रज रज कर अभिमान।
दोनों ही हों एक से, मान और अपमान॥
ना कोई से राग है, ना कोई से द्वेष।
सबसे समता मित्रता, धन्य संत धरमेश।

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फ़ोर्ट, बंबई–२३. टेलीफ़ोन : ३१३५१०. • मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफ़ोन : ८८२५१. • पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. ५००/–, चौथाई पृष्ठ रु. २५०/– • वार्षिक शुल्क रु. ५/–, आजीवन शुल्क रु. ५१/–

"विपश्यना"

वो. रजि. नं (M) NS (C) 36

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To